International Journal of Advanced Science and Research
ISSN: 2455-4227, Impact Factor: RJIF 5.12
www.allsciencejournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2017; Page No. 53-55

भारतीय संविधान संशोधन एवं मूल ढांचे का प्रश्न

सुमन चौधरी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, भारत

प्रस्तावना

मानव समाज गतिशील होता है। वक्त के साथ मानव की आवश्यकताएं और परिस्थितियां बदलती रहती हैं। एक अच्छे संविधान का गुण है कि वह समय की मांग को उजागर करे, जरूरतों और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ संविधान में भी समयानुकूल परिवर्तन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हैं। संविधान संशोधन संविधान को जीवन्त बनाये रखने का महत्वपूर्ण उपक्रम है। यद्यपि संसद के विधि वेत्ताओं ने किसी भी संविधान की संशोधन संबंधी धाराओं का अध्ययन करने के प्रति उचित प्रदर्शन नहीं किया है तथापि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि संविधान का यह भाग असाधारण महत्व का है, क्योंकि इसके द्वारा प्राप्त शक्ति के आधार पर संविधान की रूपरेखा को बदला जा सकता है। साधारण बोलचाल में संशोधन शब्द का अर्थ होता है 'सुधार' या किसी प्रलेख या यंत्र में मामूली–सा परिवर्तन। लेकिन संशोधन के प्रसंग में इसकी धाराओं को बदलने, उनमें वृद्धिया कमी करने आदि प्रक्रियाओं को संशोधन कहा जाता था। सारांश यह है कि संविधान में होने वाले किसी भी परिवर्तन को संशोधन कहा जाता है।

भारतीय संविधान के अध्याय 20 का शीर्षक है – संविधान में संशोधन। इस अध्याय के अनुच्छेद 368 में संशोधन संबंधी प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। इस कारण सर्वोच्च न्यायालय ने सदैव ही इस अनुच्छेद को संशोधन के विषय पर अपने आप में एक पूर्णसंहिता माना है। संविधान के इस अनुच्छेद में संशोधन की प्रक्रिया इस प्रकार वर्णित की गई है कि –(अ) लोकसभा या राज्यसभा में से कोई सदन संशोधन संबंधी बिल पेश करे। (ब) संसद के दोनों सदन इस बिल को निश्चित कानून के अनुसार पारित कर राष्ट्रपति के सम्मुख पेश करें। (स) राष्ट्रपति इस बिल पर स्वीकृति प्रदान करें।

संविधान के अनुच्छेदों के महत्व के आधार पर संशोधन के लिए तीन श्रेणियां निर्धारित की गई है–

(i) संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन– अनुच्छेद 75, 97, 100(3), 105(3), 118(12), 120(2), 124(2), 125, 133(3), 135, 148 आदि।

(ii) संसद के सभी सदस्यों के साधारण बहुमत और उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से संविधान में संशोधन।

(iii) संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 मतों के अलावा कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों की सहमति अनिवार्य होती है। इस श्रेणी में अनुच्छेद 54, 55, 73, 167, 124 से 147, 214 से 232, 245 से 255, संविधान की तीनों सूचियां (संघ, राज्य एवं समवर्ती सूची) संविधान के संशोधन संबंधी (368) इत्यादि।[9]

विधायिका एवं न्यायपालिका न केवल शासनतंत्र के दो महत्वपूर्ण अंग हैं अपितु दो सर्वोच्च संवैधानिक संस्थाएं भी हैं। सामंजस्य की दृष्टि से दोनों में चोली–दामन का साथ है। एक का कार्य विधि का निर्माण करना है तो दूसरे का उसकी व्याख्या करना। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व एवं अधिकारिता है। संविधान में दोनों संस्थाओं की सीमायें सुनिश्चित कर दी गई हैं। यह सुखद है कि भारत में विधायिका एवं न्यायपालिका के बीच संबंध सामान्यतः मधुर रहे हैं। इन्होंने कभी एक दूसरे की अधिकारिता का अतिक्रमण करने का प्रयास नहीं किया। दोनों में यदि कभी कुछ मतभेद भी रहा, तो वह मात्र अपने कर्तव्य निर्वहन के लिए रहा।

न्यायपालिका संविधान का संरक्षक एवं मूल अधिकारों का सजग प्रहरी माना जाता है। संविधान की रक्षा करना एवं संविधान निर्माताओं की मूल भावना का समादार करना न्यायपालिका ने अपना न केवल वैधानिक अपितु नैतिक कर्तव्य समझा है। जब–जब भी बाड़ ने खेत को खाने का प्रयास किया है, उच्चतम न्यायालय ने हस्तक्षेप कर उस खेत की रक्षा की। दोनों में संघर्ष एवं शक्ति परीक्षण का यही केन्द्र बिन्दु रहा है। हमारा संविधान एक पवित्र दस्तावेज है। यह 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' का प्रतीक एवं शिव का मंगलाचरण है। इसके आधार भूत ढाँचे की रक्षा करना न्यायपालिका का दायित्व है। जब–जब भी संसद ने इस आधारभूत ढाँचे को नष्ट अथवा क्षतिग्रस्त करने का प्रयास किया तब–तब न्यायपालिका ने इसके सुरक्षा प्रहरी का काम किया। संविधान के प्रथम संशोधन एवं शंकरी प्रसाद के मामले से लेकर केशवानन्द भारती तथा मिनर्वा मिल्स व एस.पी. गुप्ता के मामले तक की यात्रा इसी संघर्ष एवं शक्ति परीक्षण की कहानी है।[10]

मूल अधिकारों में संशोधन की शक्ति को लेकर शंकरी प्रसाद के मामले से चुनौती की यात्रा प्रारम्भ हुई जो 'आधारभूत ढांचे' के बिन्दु पर आकर केशवानन्द भारती के मामले में शिथिल पड़ी। शंकरी प्रसाद बनाम युनियन ऑफ इण्डिया[11] के मामले में संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 की विधि मान्यता को चुनौती दी गयी थी। चुनौती का आधार यह था कि यह अधिनियम भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है जो अनुच्छेद 13(2) है अतः अवैध है। अनुच्छेद 19 में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य द्वारा ऐसी कोई विधि नहीं बनायी जायेगी जो भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों को कम करती हो या छीनती हो। अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत किया जाने वाला संशोधन भी अनुच्छेद 13 के अर्थों में विधि है। अतः मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाला संशोधन असंवैधानिक होता है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को सही नहीं माना और कहा कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत किये जाने वाले संशोधन अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त शब्द 'विधि' की परिभाषा में नहीं आते। इसमें केवल ऐसी विधियाँ सम्मिलित हैं जो विधायिका द्वारा सामान्य विधायी शक्तियों के अन्तर्गत पारित की जाती है। इस प्रकार शंकरीप्रसाद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद को संविधान में मनचाहे संशोधन का लाइसेंस दे दिया।[4]

सज्जनसिंह बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान[5] के मामले में शंकरीप्रसाद जैसा ही विवाद उठा था। इसमें भी सत्रहवें संविधान संशोधन, 1964 की विधि मान्यता को उपर्युक्त आधारों पर चुनौती दी गयी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने यहाँ भी अपने पूर्व निर्णय को यथावत रखते हुए कहा कि यदि संविधान संशोधन को भी अनुच्छेद 13 के

अन्तर्गत 'विधि' मानने का आशय होता तो उसका स्पष्ट उल्लेख संविधान मे कर दिया जाता अर्थात् मूल अधिकारों को संशोधन की परिधि से बाहर रखा जाता।

गोलकनाथ बनाम स्टेट ऑफ पंजाब[6] का मामला संवैधानिक संशोधन को लेकर विधिक जगत में एक लम्बे समय तक छाया रहने वाला बहुचर्चित मामला है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अपने उपर्युक्त दोनों विनिर्णयों को उलटकर यह कह दिया कि संसद को मूल अधिकारों में संशोधन करने की कोई शक्ति नहीं है। बहुमत निर्णय में मुख्य न्यायमूर्ति के. सुब्बाराव ने कहा कि–

(1) संविधान संशोधन भी अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त शब्द 'विधि' में सम्मिलित है, अतः मूल अधिकारों को कम करने वाला या छीनने वाला संशोधन शून्य है, और

(2) अनुच्छेद 368 केवल संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख करता है, संशोधन की शक्ति का नहीं।

उनका यही कहना था कि अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त शब्द 'विधि' के अन्तर्गत केवल साधारण विधियाँ आती है, संवैधानिक संशोधन नहीं। संविधान का चौबीसवाँ संशोधन अधिनियम – विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्ति परीक्षण का एक विशेष केन्द्र बिन्दु रहा है। भारत में अक्सर यह परम्परा रही है कि जब–जब न्यायपालिका ने सरकार अथवा विधायिका के विरूद्ध कोई निर्णय दिया, तब–तब संसद ने उसके प्रभाव को समाप्त करने के लिए संविधान संशोधन किया। यहाँ पर भी इसी परम्परा का निर्वाह किया गया। गोलकनाथ के मामले में दिये गये निर्णय के प्रभाव को समाप्त करने के लिए संसद ने 1971 में चौबीसवाँ संशोधन अधिनियम पारितर किया और यह व्यवस्था दी कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत पारित कोई भी विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त शब्द 'विधी' में सम्मिलित नहीं मानी जायेगी। इस प्रकार संसद ने अपने आपको ही मूल अधिकारों में संशोधन करने के लिए सशक्त बना लिया। इसके लिए अनुच्छेद 13 में एक नया उपखण्ड (4) तथा अनुच्छेद 368 में उपखण्ड (3) जोड़ा गया।[7]

यदि विधायिका ने न्यायालयों के निर्णयों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए समय–समय पर संविधान में संशोधन का सहारा लिया तो न्यायालयों ने भी कभी तो संशोधनों का अनुसमर्थन कर उन पर अपनी पुष्टि की मोहर लगा दी तो कभी उसे सशर्त बनाकर अपने अहम् की तुष्टि भी कर ली। ऐसा ही कुछ केशवानन्द भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल[8] के मामले में हुआ है। इस मामले में संविधान के चौबीसवें संशोधन अधिनियम की विधि मान्यता को चुनौती दी गयी थी। मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति किस सीमा तक प्राप्त है? सर्वोच्च न्यायालय ने एक तरफ चौबीसवें संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता की तो पुष्टि कर दी, लेकिन दूसरी तरफ यह कहकर अपने अहम् की पुष्टि भी कर ली कि संसद ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती जिससे संविधान का 'आधारभूत ढाँचा' ही नष्ट हो जाये। इस प्रकार इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की संशोधन की शक्ति को तो विधिमान्य ठहराया ही साथ ही उसे नियंत्रित भी बताया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान ही संसद का जनक है। अतः संसद संविधान में निहित मूल तत्वों के अनुसार ही अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है। मूल तत्व संविधान की प्रस्तावना में निहित है।

आधारभूत ढाँचा क्या है?

सर्वोच्च न्यायालय ने यह तो तय कर दिया कि संसद संविधान के आधारभूत ढाँचे को नष्ट करने वाला संशोधन नहीं कर सकती लेकिन यह प्रश्न खुला रह गया कि 'आधारभूत ढाँचा क्या है?' यद्यपि इस मामले में आधारभूत ढाँचे के कई दृष्टान्त दिये गये, लेकिन अन्त में यही कहा गया कि आधारभूत ढाँचे का अर्थ प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

मुख्य न्यायमूर्ति, सिकरी ने संविधान के मूलभूत ढाँचे के निम्नांकित दृष्टान्त दिये हैं–

1. संविधान की सर्वोपरिता
2. संविधान का गणतन्त्रात्मक एवं लोकतांत्रिक स्वरूप,
3. संविधान का धर्म–निरपेक्षता स्वरूप,
4. विधानपालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण एवं
5. संविधान की संघात्मक प्रकृति।[9]

न्यायमूर्ति शेलट एवं ग्रोवर ने इनके अतिरिक्त आधारभूत ढाँचे के निम्नांकित दृष्टान्त और दिये हैं :

1. मूल अधिकारों एवं राज्य के नीहति निदेशक तत्वों द्वारा सुनिश्चित व्यक्ति की गरिमा तथा
2. देश की एकता एवं अखण्डता।
3. न्यायमूर्ति श्री हेगड़े एवं मुखर्जी ने इस श्रृंखला में निम्नांकित दृष्टान्त जोड़े हैं–

1. भारत की सम्प्रभुता एवं
2. कल्याणकारी राज्य की स्थापना।

संविधान में संशोधन की संसद की शक्ति का बड़ा सुन्दर चित्रण करते हुए न्यायाधीशों ने कहा कि ''इसे संविधान के गले में फांसी का फन्दा नहीं बनाया जा सकता जिसे विधिपूर्ण मृत्यु की संज्ञा दी जा सके।' इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने कुल मिलाकर संविधान की प्रस्तावना में दिये आदर्शों की रक्षा करते हुए ऐसी व्यवस्था दी है कि संसद संशोधन तो कर सकती है लेकिन ऐसा नहीं जो संविधान के आधारभूत ढाँचे को ही नष्ट कर दे।[10]

आधारभूत ढाँचे से छेड़छाड

केशवानन्द भारती के बाद न्यायालय के समक्ष ऐसे कई मामले आये जिनमें आधारभूत ढाँचे के सिद्धान्त ही अग्नि परीक्षा हुई। सबसे पहला महत्वपूर्ण मामला–इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण का। इसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के चुनाव को भ्रष्ट आचरण के आधार पर शून्य घोषित कर दिया गया था, साथ ही अपीलार्थी को छः वर्ष के लिए चुनाव में अभ्यर्थी होने के लिए अपात्र भी घोषित कर दिया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस निर्णय को निष्प्रभावी करने के लिए संसद द्वारा सन् 1975 में उन्चालीसवां संशोधन अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा न केवल अपीलार्थी के चुनाव को वैध बनाया गया अपितु संविधान में एक नया अनुच्छेद 329 (क) जोड़ा गया जिसका आशय यह घोषणा करना था कि अपीलार्थी का चुनाव वैध था, वैध है और वैध रहेगा। इसके द्वारा प्रधानमंत्री के निर्वाचन संबंधी मामलों को न्यायालय की अधिकारिता से बाहर कर दिया गया था। इसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने मध्यम मार्ग अपनाते हुए अपीलार्थी के चुनाव को तो वैध करार दे दिया, परन्तु 39वाँ संशोधन यह कहते हुए अवैध घोषित कर दिया कि यह संविधान के आधारभूत ढाँचे को नष्ट करने वाला है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'लोकतंत्र' संविधान का आधारभूत ढाँचा है और लोकतंत्र की सफलता एवं रक्षा के लिए चुनाव का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना आवश्यक है। इसे न्यायालय की अधिकारिता से बाहर नहीं किया जा सकता।[12] इसी क्रम में सर्वोच्च न्यायालय ने 'आधारभूत ढाँचे' की कड़ी में निम्नांकित दृष्टान्त और जोड़ दिये–

1. प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में भारत
2. दर्जे और अवसर की समानता
3. धर्मनिरपेक्षता और अन्तःकरण की स्वतंत्रता और

4. विधि का शासन[13]

आधारभूत ढांचे की अग्नि–परीक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण मामला एस. पी. गुप्ता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया[14] का आया। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता संविधान का आधारभूत ढाँचा है। केशवानन्द भारती मामला विधायिका बदलना चाहती थी इसलिए संसद ने सन् 1976 में बयालीसवाँ संशोधन अधिनियम पारित कर अनुच्छेद 368 में खण्ड (4) एवं (5) जोड़ते हुए संशोधन की शक्ति को न्यायालय की अधिकारिता से बाहर कर दिया। न्यायालय ने भी मिनर्वा मिल्स[15] के मामले में उक्त संशोधन अधिनियम को असंवैधानिक घोषित कर दिया और कहा कि संविधान में संशोधन की असीमित शक्ति देने वाला यह अधिनियम संविधान के आधारभूत ढाँचे को नष्ट करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'आधारभूत ढाँचे' में कुछ और दृष्टान्त जोड़ दिये–

1. संविधान में संशोधन करने की संसद की सीमित शक्ति एवं
2. न्यायिक पुनर्विलोकन

इस प्रकार संविधान में संशोधन की संसद की शक्ति को छोड़कर विधायिका और न्यायपालिका में द्वन्द्व प्रारम्भ से ही चलता आ रहा है और ऐसा लगता है कि यह द्वन्द्व तब तक चलता ही रहेगा जब तक सर्वोच्च न्यायालय संविधान का रक्षक एवं नागरिकों के मूल अधिकारों का सजग प्रहरी है। भारतीय संविधा निर्माता स्वयं यह चाहते थे कि न्यायपालिका विधायिका की शक्ति को नियन्त्रित रखे इसी कारण यूरोपीय मॉडल भी न्यायालयों को सविधान संशोधनों प न्यायिक समीक्षा का अधिकार नही देता, लेकिन भारतीय सर्वोउच्च न्यायालय न केवल कानूनों, वरन संविधान संशोधनों की भी न्यायिक समीक्षा कर सकता है और यदि उन्हे संविधान के मूल ढांचे के विरूद्ध पाए तो उन्हे निरस्त भी कर सकता है जैसा कि उसने 99वें संशोधन का किया, लेकिन मूल ढ़ाचे को न तो संविधान ने और न ही न्यायपालिका ने कहीं भी अंतिम रूप से परिभाषित किया है यह एक प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय को विधायिका और कार्यपालिका को विटो पावर देने जैसा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, नेशनल बुक इस्ट, इण्डिया, 2004 पृ. 264–265
2. डॉ. बसन्तीलाल बाबेल – संसद, सांसद और सर्वोच्च न्यायालय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1999, पृ. 52
3. शंकरी प्रसाद बनाम युनियन ऑफ इण्डिया, ए. आई आर. 1951, एस.सी. 458
4. पूर्ववर्ती, डॉ. बसन्ती लाल बाबेल, पृ. 53
5. सज्जन सिंह बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान, ए.आई.आर. 1965,
6. गोलकनाथ बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, एआईआर 1967, एस सी 1643
7. प्रकाश नारायण नाटाणी, भारत में न्यायपालिका, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर 2014 पृ. 133
8. केशवानन्द भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल, एआईआर 1973, एस.सी. 1461
9. सुभाष कश्यप, हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2001, पृ. 48
10. पूर्ववर्ती, डॉ. बसन्ती लाल बाबेल, पृ. 55
11. इन्द्रिरा नेहरू गाँधी बनाम राजनारायण, ए आई आर 1975, एस.सी. 2299
12. डॉ. फरहत खान, न्यायिक प्रक्रिया, अमर लॉ पब्लिकेशन, 2015, पृ. 140–141
13. पूर्ववर्ती, सुभाष कश्यप, पृ. 49
14. एस.पी. गुप्ता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, एआईआर 1982, एससी 1949
15. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, एआईआर 1980, एस.सी. 1789